परम ज्ञानियों में एक वैज्ञानिक : महावीर

स्वामी वाहिद काज़मी

बुद्ध पुरुषों के समूचे इतिहास तथा जैन तीर्थंकरों की पूरी परम्परा में महावीर अकेले ऐसे व्यक्ति ठहरते हैं, जिन्हें सर्वथा मौलिक व अनूठा ही नहीं अति साहसी बुद्धपुरुष कहा जा सकता है। साहसी इस अर्थ में कि वह जिसे हम परमसत्ता कहें, परमसत्य कहें, परमज्ञान कहें, मोक्ष कहें या निर्वाण, उस तक पहुंचने का जो मार्ग उन्होंने बताया, उसमें न किसी शास्त्र की आवश्यकता रखी, न पंथ की, न गुरु की, न किसी और की, कहीं कोई 'पर' है ही नहीं, वह 'स्व' की उड़ान है, 'स्व' की ओर तथा 'स्व' की ही प्राप्ति हेतु बीच में तनिक भी किसी का सहारा लिया तो भटकन फिर भटकन का प्रारंभ होने में देर नहीं लगती। अतः उन्होंने साधना-जगत् में साधक को सबसे पहले सही अर्थों में मुक्त करने तथा स्व-अधीन रखने का प्रयास किया। तथ्य यही है कि जीवन में जो भी अति मूल्यवान् है उसे स्वयं में ही और स्वयं से ही प्राप्त किया जा सकता है। अर्थात् सत्य किसी अन्य में नहीं स्वयं में ही निहित है। बस जिसे निरन्तर उघाड़ते चले जाना है। दूसरे के सहारे से जो प्राप्त हो सकता है, वह उधार का होगा, बासी होगा, उसमें जीवंतता नहीं होगी। वह 'उसका' सत्य होगा 'अपना' सत्य नहीं। सत्य का आविर्भाव और सत्य की परम अनुभूति स्वयं में ही हो सकती है। यह दृष्टि महावीर ने बड़े साहस के साथ प्रस्तुत की है। इसीलिए उन्होंने न तो खुद किसी के पीछे चलना पसंद किया और न अपने पीछे किसी को चलाना। अतः अनुयायी अथवा गुरु-शिष्य जैसी कोई परम्परा उनके यहां प्रश्रय नहीं पा सकी, न पल्लवित हो सकी। उनके अनुसार कोई किसी को मोक्ष नहीं दे सकता कोई किसी का मोक्षदाता या मुक्तिदाता है ही नहीं। अतः अनुकरण या अनुयायी का प्रश्न ही नहीं उठता। अनुगमन भी नहीं, अधिक से अधिक महावीर के साथ सहगमन हो सकता है और यह बड़ी क्रांतिकारी बात थी। इसलिए उनके यहां अधिक से अधिक संभावना कल्याण-मित्र की ही पायी जा सकेगी। यानी न आगे न पीछे अपितु वह एक जो संग चलने को राजी हो सके। यहां तक कि उन्होंने परम्पराओं से चले आ रहे ईश्वर या परमात्मा को भी अपना इष्ट बनाने की आवश्यकता नहीं समझी। जो अब तक सभी साधना-मार्गों का हकमान लक्ष्य रहता आया था। यह स्वतंत्र दृष्टि उन जैसा साहसी पुरुष ही दे सकता था। इसलिए मैं उन्हें परमसाहसी पुरुष कह रहा हूं। यद्यपि उनकी इस स्वतंत्र दृष्टि को कुछ का कुछ अर्थ देने की भ्रांतिवशात् उन्हें नास्तिक मान लेने की बड़ी भारी भूल हो गयी और इस संकीर्ण-दृष्टिकोण का प्रबलतम दुष्परिणाम यह हुआ कि ब्राह्मण संस्कृति, श्रमण संस्कृति की विरोधी हो गयी और वह विरोध अब तक समूल नष्ट नहीं हो पाया। बावजूद इसके कि ये दोनों आर्य-दर्शन की दो धाराएं थीं किंतु विरोध के कारण एक दूसरे से बहुत दूर नजर आने लगीं।

महावीर की एक और बहुत बड़ी खूबी जो उन्हें अन्य बुद्ध पुरुषों से विशिष्टता प्रदान करती देखी जा सकती है। वह यह है कि सत्य की या ज्ञान की अनुभूति की पूर्णता को तो बहुतेरे महामानव प्राप्त हुए हैं और होते भी रहेंगे, मगर अनुभूति के साथ-साथ उतनी ही महत्त्वपूर्ण जो अभिव्यक्ति-क्षमता होती है उसने महावीर से बढ़कर शायद किसी अन्य ज्ञानी में इतनी पूर्णता को प्राप्त नहीं किया बल्कि यह कहना अधिक उचित प्रतीत होता है कि अभिव्यक्ति की समग्रता और संपूर्णता यदि किसी ज्ञानी को प्राप्त रही तो वे महावीर हैं। इसके कारण भी हैं। मोटे तौर पर यह कि बुद्धत्व विषयक या परमज्ञान विषयक जो वैज्ञानिक दृष्टि, जो वैज्ञानिक चिंतना है, वह महावीर के समान किसी अन्य ज्ञानी में नहीं है। उन्हें यदि बुद्धपुरुषों में वैज्ञानिक या वैज्ञानिक बुद्धपुरुष कहा जाये तो गलत नहीं होगा। साधना तथा आत्मोप्लब्धि से निःसृत महावीर की जो चिंतना, देशना या प्रक्रियाएं हैं उनमें से कुछेक की ओर संकेत करना इस समय अति प्रासंगिक प्रतीत होता है।

अब तक विश्व में जो भी तर्क-प्रणालियां प्रचलित हैं वे दो ही हैं। एक है प्रख्यात विचारक अरस्तू की तर्क-पद्धति जो साफ है, सीधी है, बिल्कुल आसानी से और बड़ी जल्दी समझ में आ जानेवाली है। मामला बड़ा हिसाबी है। उसके अनुसार दो और दो-चार होते ही हैं। इस कारण वह समूचे संसार में प्रचलित है। यद्यपि अरस्तू की पद्धति प्रत्येक स्थिति में और बहुत अधिक सत्य नहीं है। तथापि, मान्य है और हावी है। यानी अरस्तू के अनुसार (उदाहरणार्थ) 'क' क है और 'ख' ख है। 'क' कभी 'ख' और 'ख' कभी 'क' नहीं होता न हो सकता है। यानी उसकी विचारणा विश्लेषण पर आधारित है और किसी भी सत्य को तोड़कर, पृथक्-पृथक्, खंड-खंड करके निष्कर्ष देती है। एक है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महावीर की तर्क-पद्धति या विचारणा जिसके अनुसार 'क' में 'ख' की भी संभावना है और 'ख' में 'क' की भी संभावना है—यह बात जरा साफ और सीधी नहीं रह जाती, इसलिए मान्यता नहीं मिल सकी और संसार इस तर्क से प्रायः अनभिज्ञ ही रहता चला आया है किंतु सत्य इसी में निहित है। वास्तव में गहरी दृष्टि से देखा जाये तो जीवन या केंद्र अस्तित्व, इतना सरल और इतना ठोस (जड़) नहीं है जितना अरस्तू ने समझ लिया है, समझा दिया है, और समझने वाले समझ भी गये हैं किंतु अरस्तू से कहीं अधिक गहरे जो पहुंचे हैं उन्होंने पाया है कि जीवन में, अस्तित्व में, न कोई भी 'क' केवल 'क' है और न कोई 'ख' मात्र 'ख' है। वह चाहे कुछ भी हो। न तो प्रकाश केवल प्रकाश है न अंधकार, केवल अंधकार है न तो कोई पुरुष सिर्फ पुरुष है, न कोई स्त्री सिर्फ स्त्री है। किसी भी तथ्य के कोई भी दो पहलू किसी बहुत बड़े सत्य के मानक दो पहलू हैं, जिन्हें तोड़कर या एक दूसरे से बिल्कुल पृथक् करके देखना एकांगी दृष्टि का परिचायक तो हो सकता है, उस पूरे सत्य का परिचायक कभी नहीं हो सकेगा।

महावीर के अनुसार जीवन के किसी भी एक पक्ष को देख कर, मान कर अथवा ग्रहण कर जो दावा किया जाये वह एक पक्षीय है, उसे एकान्त कहा गया है, किसी एक कोने पर पहुंचा, किसी एक कोने को देखने वाला व्यक्ति एकान्तवादी हुआ किंतु जीवन केवल उस एक कोने से देखे गए, उसी एक पहलू में समाये किसी सीमित अस्तित्व का नाम नहीं है, जीवन उससे कहीं अधिक विराट् विस्तीर्ण तथा असीम है, उस एक के अतिरिक्त भी कई एक कोने, कई एक ऐसे पहलू शेष रह जाते हैं जो अनदेखे होंगे, तब एकांतवादी के लिए वे अज्ञात रह जाते हैं, अर्थात् किसी एक ही कोने से देखा या अनुभव किया गया सत्य बहुत छोटा पड़ जाता है, और अगर सही कहा जाये तो सत्य से बहुत दूर भी है, संकीण है, जबकि सत्य कभी संकीर्ण नहीं, वह है विराट्, उसमें हर पक्ष, हर कोना, सब समाहित है,। इसलिए महावीर का आग्रह 'एक' पर नहीं है, वे 'अनेक' की पूरी संभावना पाते हैं, तो, उनके यहां न कोई विरोध है और न विरोधी दृष्टि और न नकार है। वहां तो सभी कुछ एक दूसरे का ठीक-ठीक परिपूरक है और एक ही सत्य का कोई कोना है। वे तो यहां तक कहते हैं कि यदि हम सभी पक्षों अथवा सभी दृष्टियों को जोड़ भी लें तो भी सत्य के बारे में जो वक्तव्य होगा वह भी पूरा नहीं होगा। क्योंकि उतने में भी सत्य पूरा नहीं हो जाता। उसके सभी पहलू हमारे सामने नहीं आ जाते हैं, प्रत्येक अनुभव के अनन्त कोण हैं और हर कोण पर खड़ा आदमी बस उतने तक ही सही है जितने तक वह देख पा रहा है। अतः उन्होंने एक सर्वथा नूतन दृष्टि दी जिसे कहते हैं—अनेकान्त यानी जीवन के देखे-अनदेखे सभी पहलुओं की एकसाथ स्वीकृति।

महावीर ने जीवन को, सत्य को, इतने कोनों से देखा है जितना शायद किसी बुद्धपुरुष ने नहीं देखा होगा। यद्यपि उनसे पूर्व भी सत्य के सम्बन्ध में तीन संभावनाओं की पुरानी स्वीकृति चली आती थी। जो मान्य भी थी, उदाहरणार्थ कोई वस्तु नहीं है, और वस्तु है भी, बस सत्य को इन्हीं तीन कोणों (है, नहीं है, अथवा दोनों याना है भी व नहीं भी) से देखा गया था। इसके बाद या इससे भिन्न किसी भी संभावना पर कोई विचारणा प्रस्तुत नहीं की गयी थी। पुरानी भाषा में इस दृष्टि को त्रिभंगी-दृष्टि कहते हैं और यह महावीर से पूर्व ही चली आती थी, महावीर वे प्रथम क्रांतिकारी ज्ञानी पुरुष हैं जिन्होंने इस त्रिभंगी-दृष्टि का विस्तार और विकास बड़े ही अनूठे ढंग से किया, उन्होंने इसे त्रिभंगी से, उसी भाषा में कहें तो, सप्तभंगी कर दिया। क्योंकि उनके अनुसार सत्य इन्हीं तीन में नहीं समाया हुआ। बहुत कुछ है जो इससे बाहर रह जाता है, तब उसका क्या होगा ? अतः उन्होंने एक नया शब्द जोड़ा—'स्यात्:' (शायद या कदाचित् के अर्थ में नहीं) उन्होंने इन सीधी-साधी तीन संभावनाओं में चौथी संभावना की वृद्धि करके एक कड़ी यह जोड़ी कि—'स्यात् अनिर्वचनीय है ? यानी जो हो भी सके, नहीं भी हो सके, पांचवीं कड़ी जोड़ी कि—स्यात् है और अनिर्वचनीय है, छटी जोड़ी कि—'स्यात् है, नहीं है और अनिर्वचनीय है ! और अंत में सातवीं कड़ी जोड़कर कहा कि— स्यात् है भी और नहीं भी है और अनिर्वचनीय है ! इस प्रकार, उनके देखे, सत्य को इन सात कोणों से देखा जा सकता है, यह उनकी अभूतपूर्व और अद्‌भुत विचारणा है जो सत्य के सर्वाधिक समीप तक पहुंचती है। अब अगर महावीर से प्रश्न किया जाये—आत्मा है ? (यह मैं उदाहरण दे रहा हूं, प्रश्न कुछ भी पूछा जा सकता है) तो उनका उत्तर इस प्रकार होगा—स्यात् है भी, स्यात् नहीं भी है, स्यात् है भी—नहीं भी, स्यात् अनिर्वचनीय है, स्यात् है, और अनिर्वचनीय है, स्यात् नहीं है और अनिर्वचनीय है, स्यात् है भी—नहीं भी और अनिर्वचनीय है। प्रकट में यह बात सामान्य बुद्धि से परे भले ही पड़ जाये, किंतु इससे अधिक पूर्ण वक्तव्य नहीं हो सकता, सत्य के बारे में इतना गहन दर्शन अपने आप में बड़ी क्रांतिकारी चीज है, इसी को महावीर का स्यात्-दर्शन कहा जाता है, जिसका आधार है सापेक्ष-दृष्टि।

महावीर की इस अद्‌भुत विचारणा को तब तक न तो पूर्ण स्वीकृति मिल पायी और न इसे ठीक-ठीक समझा गया। जब तक कि इस शती के महान् वैज्ञानिक आइन्स्टीन ने सापेक्ष-सिद्धान्त के निष्कर्ष प्रस्तुत न कर दिये। क्या यह रोचक बात नहीं है कि आइन्स्टीन विज्ञान की भाषा में भौतिक शास्त्र के अन्तर्गत जो बात कर रहा है, अध्यात्म विज्ञान के अन्तर्गत महावीर उसे पच्चीस सौ वर्ष पहले ही कह चुके थे, अतः इस बात की बहुत बड़ी संभावना है कि महावीर का यह स्यात्-दर्शन भविष्य के लिए दिन ब दिन बड़ा कीमती हो जाने वाला है, आज के विज्ञान ने उसे बहुत बड़ी स्वीकृति दे दी है। भौतिक विज्ञान के अन्तर्गत आइन्स्टीन की सापेक्ष-थ्योरी और अध्यात्म के अन्तर्गत महावीर की सापेक्ष-दृष्टि बहुत बड़ी सीमा तक समान है, अर्थात् विज्ञान-जगत् में अब तक यही माना जाता था कि परमाणु (एटम) एक कण या बिंदु-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रूप ही है, जिसमें न लंबाई है न चौड़ाई, । किंतु वर्त्तमान खोजों ने यह साबित कर दिया कि परमाणु बिंदु ही नहीं बल्कि 'बिंदु भी है और तरंग भी' कभी उसका व्यवहार बिंदु की तरह होता है तो कभी तरंग की तरह, अब इसे किस प्रकार व्याख्यायित किया जाये ? यही न कि कहें—स्यात् अणु है, स्यात् तरंग है, मगर विज्ञान की भाषा में ऐसा कहा नहीं जा सकता। अतः वैज्ञानिकों को एक नया शब्द गढ़ना पड़ा। क्वांटा। क्वांटा अर्थात् वह जो एक ही समय में बिंदु भी है और तरंग भी, विज्ञान की क्वांटा-थ्योरी का निचोड़ यही है कि दोनों ही स्थितियां हैं और एक साथ हैं। इस प्रकार विज्ञान के द्वारा एकान्त-दृष्टि का खंडन हुआ और महावीर द्वारा प्रस्तुत अनेकान्त-दर्शन या स्यात्-दर्शन को वैज्ञानिक स्वीकृति मिली, जो उनकी वैज्ञानिक विचारणा का सबसे बड़ा अकाट्य प्रमाण है।

हां, एक बात और, महावीर की इस विचारणा को मैंने प्रचलित शब्द स्यात्वाद अथवा अनेकान्तवाद देना उचित नहीं समझा है। वह इसलिए कि उनके जैसे ज्ञानी की किसी भी विचारणा को किसी 'वाद' या 'इज्म' के चौखटे में जड़ना उसे छोटा कर देना होगा। इसीलिए यहां मैंने 'स्यात्-दर्शन' और 'अनेकान्त-दर्शन' शब्द प्रयोग किये। दर्शन भी फिलासफी के अर्थ में नहीं, अपितु प्रत्यक्ष देखने के अर्थ में।

अनेक दार्शनिक तथा धार्मिक धारणायें ऐसी मिल जायेंगी जिनके अनुसार पूर्वजन्म की बात महज एक परिकल्पना से अधिक प्रतीत नहीं होती। अतः वे इसे कोई महत्त्व या मूल्य नहीं दे पाते हैं। किंतु भारत ने, जहां आध्यात्मिक-जगत् की बहुत ऊंचाइयां खोजीं और बड़ी गहराइयां पायी हैं, पूर्वजन्म को किसी परिकल्पना के तौर पर नहीं अपितु एक जीती-जागती सच्चाई के रूप में खोजा तथा प्रतिष्ठापित भी किया। महावीर से पहले भी, अधिक सुलझे हुए तौर पर ब्राह्मण संस्कृति में पूर्वजन्म विषयक सत्यों के रहस्योद्घाटन पर विस्तार से बहुत कुछ चर्चा मिलती है। किंतु महावीर, जैसा कि निवेदन कर चुका हूं बड़े मौलिक और क्रांतिकारी ज्ञानी पुरुष हैं—ने पूर्वजन्म की विवेचना न केवल किसी सैद्धांतिक या दार्शनिक भूमि पर खड़े होकर की बल्कि पूर्वजन्म में उतर सकने की एक बाकायदा प्रक्रिया भी विकसित की जिसका उन्होंने भरपूर उपयोग भी किया। यहां तक कि अपने साधकों के लिए तो उन्होंने उसे अनिवार्य भी कर दिया था। पूर्वजन्म में उतर पाने की उनकी प्रक्रिया भी वैज्ञानिक है। उसे उन्होंने नाम दिया—जाति स्मरण।

वस्तुतः मानव-रचना में प्रकृति की व्यवस्था बड़ी रहस्यपूर्ण है, किंतु जटिल नहीं है। हां, यह अलग बात है कि हम खुद अपने हाथों उसे जटिल बना लेते हैं, मान लेते हैं। प्रकृति ने बड़े ढंग से इस बात का पूरा बंदोबस्त किया हुआ है कि वर्त्तमानजन्म में पूर्वजन्म का स्मरण न आने पाये। यह हमारे ही हित में इसलिये है कि यदि वह स्मरण आ सके तो फिर उसे विस्मृत नहीं किया जा सकता। फिर यदि वह वर्त्तमान जन्म से हीन हुआ (और अधिकतर हीन होने की संभावना ही है। क्योंकि मानव उत्तरोत्तर हीन से श्रेष्ठ की ओर यात्रा करता है) तो उसकी स्मृति सदैव ताजा रहने से आज का जीवन दुःखों से भर सकता है। जैसे कि अब कोई जो मखमली आसनों पर बिराजता बड़ा सम्मानित व्यक्ति है, यदि यह देख पाये कि अब से एक ही कदम पहले वह एक कोढ़ी था, मक्खियां भिनभिनाती थीं। तो क्या हालत होगी ? अतः प्रकृति की पूरी व्यवस्था है कि पूर्वजन्म पुनः याद न आ सके। इसका मतलब यह हुआ कि पूर्वजन्म कहीं खो नहीं जाता, नष्ट नहीं हो जाता। बस हमारी स्मृति-प्लेट के आगे बढ़ जाने से वह टेप की तरह लिपट जाता है। सो हमें स्मरण नहीं रहता। अब यदि कोई ऐसी विधि हो कि उसे फिर से स्मरण में लाया जा सके तो उसे आज भी देखा जा सकता है। महावीर ने इस विषय में अपनी अद्वितीय और मौलिक दृष्टि का एक अभूतपूर्व प्रमाण दिया, जो शायद उनसे पूर्व किसी के यहां नहीं पाया जा सकता, और साधना-जगत् में उन्होंने उसका बहुत ही अभिनव प्रयोग व उपयोग भी किया।

मिसाल के तौर पर उस व्यक्ति को, जो आज भी कभी धन के पीछे दौड़ रहा है तो कभी स्त्री के पीछे कभी प्रसिद्धि के पीछे तो कभी किसी और कामना के पीछे चाहे कितने ही शाब्दिक व्याख्यान घोंट-घोंट कर पिलाये जायें, कि इससे पूर्व भी वह यही सब कुछ करता चला आया है और परिणाम में कुछ भी नहीं पाया है, तो वह कभी भी माननेवाला नहीं है प्रकट में सिरहिलाकर और आंखें मींचकर स्वीकार करने का अभिनव भले ही कर ले, और कहने वाले को यकीन दिलाता रहे कि वह मान गया है, किन्तु उसने यकीन किया तो नहीं है कहीं से सुनकर या पढ़कर आदमी विश्वास का लबादा भले ही ओढ़ ले विश्वास करता नहीं है फिर यदि जो कहा जा रहा है एक फिल्म के समान उसे प्रत्यक्ष दिखा भी दिया जाये तो फिर एक शब्द भी अलग से कहने की आवश्यकता नहीं रहेगी। अपनी खुली आंखों से सब कुछ साफ-साफ देखलिया और बात समाप्त हो गयी, अब कैसा अविश्वास ! तो, महावीर ने एक अद्भुत ध्यान-पद्धति विकसित की—जाति स्मरण जिसके प्रयोग द्वारा कोई भी साधक अपने पिछले जन्म में उतर सकता है तब उसे सहज ही यह पता चल जाता है कि वह क्या था और कैसा था। एक ही नही यदि खोज और प्यास गहरी हो तो कई जन्मों में भी उतर जाना असंभव नहीं रहता। फिर यही आदमी जो अब तक जैसा था पूर्वजन्म में झांककर देख लेने के उपरान्त वैसा नहीं रह जाएगा। उसे ठीक-ठीक दिखाई दे जाएगा कि जो भी वह आज कर रहा है इसे पूर्व भी और उससे पूर्व भी यही सब कुछ तो करता चला आया है, नतीजा कुछ भी नहीं पाया है। यही वह बिंदु है जहां से व्यक्ति के आंतरिक तल पर एक स्थाई परिवर्तन आ जाता है। आंखें खुल जाती हैं। घूमते हुए एक चाक की सी अपनी स्थिति उसे साफ-साफ दीखने लगती है। कभी यह हिस्सा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऊपर तो कभी वह हिस्सा नीचे आता जाता रहा है। किन्तु घूमता चलता रहा है, आज वह जो भी है उसका उल्टा भी रह चुका है। या पहले जो था उसका उल्टा आज कर रहा है। यानी कभी वह भोगी भी रहा है जिसकीं प्रतिक्रिया में आज वह त्यागी हो गया है। यदि कभी त्यागी रहा है तो अब भोगी हुआ बैठा है। फर्क क्या पड़ा? उधर स्त्री के पीछे भागता रहा, तो इधर स्त्री से दूर भागता जा रहा है। ये वहां धन के लिए पागल रहा, तो यहां धन के कारण पागल है। और यही सब कुछ बहुत-बहुत बार होता रहा है।

जाति स्मरण का उद्देश्य यही है कि बहुत ही विरोधाभासी स्थितियों में, अनेकानेक द्वन्द्वों में, अनेक बार इसी प्रकार आते रहे हैं, जाते रहे हैं। आज हम जो भी कुछ कर रहे हैं भोग रहे हैं वह पता नहीं कितनी बार कर चुके, भोग चुके हैं। हम कुछ भी नया नहीं करते। वही-वही दोहराते भर हैं। अतः महावीर का यह अनूठा प्रयोग—जातिस्मरण—बड़ा ही कारगर उपाय है इस अंधी दौड़ को एक बार प्रत्यक्ष दिखा देने की ओर यह अंधापन दिखाई पढ़ते ही व्यक्ति की पकड़ इस दौड़ पर से छूटने लगती है। उसे यह ठीक-ठीक समझ में आ जाता है कि वह जो भी कर रहा है, कुछ भी नया या भिन्न नहीं कर रहा। पुनरावृत्ति के इस चक्र में घूमता ही चला आया है। अतएव यह जातिस्मरण का अनूठा प्रयोग महावीर की जो बहुत ही मूल्यवान और बड़ी से बड़ी देन साधना जगत् में है उनमें से एक है। यद्यपि वैज्ञानिक ढंग से अभी इस पर इतना कार्य नहीं हो सका जितना होना चाहिए। जब तक कोई साधक इस ध्यान पद्धति से—जाति स्मरण के प्रयोग से कम-से-कम एक बार न गुजर जाये तब तक वह जो कुछ भी रहा है उसका उल्टा, अथवा जो भी है आगे उसका उल्टा करने में, होने में, पड़ा रहेगा। संसारी रहा है तो संन्यास में रुचि लेने लगेगा। संन्यासी रहा है तो संसार में रस लेने लगेगा। रागी रहा है तो विरागी हो जाएगा। वैराग्य से लिप्त रहा है तो राग से बंध जाएगा। क्योंकि एक से ऊब जाने के कारण व्यक्ति उससे पीछा छुड़ा कर उसके विपरीत को पकड़ लेता है। यही उसकी मूर्छा है। जाति स्मरण के प्रयोग से उसकी यही मूर्छा टूटने में बड़ी कीमती सहायता मिलती है और तब व्यक्ति राग एवं विराग दोनों के द्वन्द्वों से छूटने लगता है। वासनाओं पर उसकी स्वनिर्मित जकड़बंदी शनैः-शनैः ढीली पड़ती चली जाती है और फिर वह जिस स्थिति की ओर अग्रसर होता है उसे महावीर ने बहुत अद्भुत शब्द दिया है। वह स्थिति है—वीतरागता।

वीतराग शब्द ही बड़ा अनूठा है। महावीर से पूर्व यह शब्द प्रायः नहीं था। वे ही इसे लेकर आये। और उनकी दी हुई साधनाएं, यदि गहरे से देखा जाये तो इसी की प्राप्ति के लिए हैं इससे पूर्व दो शब्द चलते थे। राग (शाब्दिक अर्थ रंग) और उसके विपरीत विराग। रागी यानी वह व्यक्ति जो रंगा हुआ है संसार में, सुख-सुविधाओं में, भौतिकता में पूरी तरह रत है वासनाओं-कामनाओं में। विरागी ठीक इसके विपरीत खड़ा है। यानी रागी जिस ओर मुंह किये है विरागी उस ओर से पीठ किये उधर से विमुख हो गया है। स्मरण रहे! विरागी छूट नहीं गया है, मुक्त नहीं हो गया है। बहुत सूक्ष्म में राग और विराग एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। यदि रागी संसार में लिप्त है, दिन-रात भोगे चला जा रहा है तो विरागी वैराग्य या त्याग में लिप्त है। यानी लिप्त दोनों ही हैं। अलिप्त या कहें निर्लिप्त कोई भी नहीं है। भोगी समझ रहा है स्त्री में स्वर्ग है। विरागी उसका उल्टा समझ रहा है कि ये चीजें ही तो नरक हैं। भागो इनसे। बंधे दोनों ही हैं। सही बात यह है कि राग से मुक्त हो जाने वाला व्यक्ति विरागी नहीं हो जाता। जैसा कि सामान्यतः माना जाता है। विरागी की भी अपनी तरह की वासनायें हैं—स्वर्ग की, मोक्ष की। तो न रागी मुक्त हुआ न विरागी मुक्त हुआ। दोनों बंधे हैं। केवल एक दूसरे की तरफ पीठ किये—विपरीत खड़े है। अर्थात् या तो 'यह' अथवा 'वह' जो इसका उल्टा है। इस चुनाव इच्छा से दोनों आबद्ध हैं। यह या वह के चुनाव से बाहर नहीं हो गये। और कितने मजे की बात यह है। जैसा कि मनोवैज्ञानिक कहते हैं और सही कहते हैं कि यह जो सांसारिक भोगों में रत रागी है। इसके अचेतन में ठीक इसके विपरीत चलता रहता है वहां आत्मा-परमात्मा की बातें होंगी। अध्यात्म और धर्म की चर्चा होगी। और जो वैरागी है, उसके अचेतन में राग विषयक बातें होंगी। तात्पर्य यह कि जो राग से बंधा है वह तो मुक्त है ही नहीं विरागी भी मुक्त नहीं है। तो फिर कौन है ऐसा जिसे मुक्त कहा जा सके? उत्तर में यही निवेदन है कि मुक्त वही व्यक्ति हो सकता है जो महावीर के अनुसार वीतरागता वाली स्थिति को प्राप्त हो गया हो।

साधारणतः वीतराग को भी विराग या वैराग्य का ही एक रूप मानने की भूल की जाती है। जो सही नहीं है। वीतराग बात ही कुछ और है। अर्थात् महावीर के अनुसार वह स्थिति जहां पहुंचकर न 'यह' न 'वह', न 'इस पर' न 'उस पर' इन दोनों छोरों से जो पार हो जाये। इनके बाहर पहुंच जाए वह वीतराग है। राग और विराग अच्छे या बुरे संसार या स्वर्ग, सुख और दुःख आदि दोनों की वासना से जो छूट गया बाहर हो गया और अब उसका अपना कोई चुनाव कोई कामना शेष न रही वही वीतरागी हुआ। जीवन की परम उपलब्धि यदि किसी को कहा जा सकता है तो वह यही वीतराग है। जीवन-यात्रा का जो सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण, बल्कि जिसे कहें परम बिंदु है, और अधिक गहरे अर्थ में अन्तिम बिन्दु भी, तो वह यही है। अन्तिम इस कारण से कि फिर इसके पश्चात् ही मुक्ति की यात्रा का प्रारंभ होता है। वीतरागता की स्थिति को प्राप्त किए बिना कोई मुक्ति-यात्रा संभव नहीं हो पाती। यह कतई विचारणीय नहीं कि रागी होना चाहिए या विरागी। विचारणीय यह होना चाहिए कि हम जो भी हैं उसके प्रति कितने जाग्रत हैं। कितने मूर्छित हैं। इन दोनों के प्रति जाग जाना, होश से, ध्यान से, मर जाना हमारी जन्मों-जन्मों की मूर्छा भंग करने में सहायक होगा। फिर जब इन दोनों के प्रति मूर्छा टूटना प्रारंभ होगी तो वह न राग में ले

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जाएगी न विराग में। वह वीतराग की ओर ले जाएगी जो अपने आप में बड़ी कीमती चीज है।

फ्रॉयड, युंग, एडलर आदि मनस्वियों ने तो अब आकर यह बात कही कि हम जो भी करते हैं ठीक उसके विपरीत हमारे अचेतन (मन) में जुटने लगता है, संग्रहीत होने लगता है। जिससे प्रेम हो तो उसी के प्रति घृणा भी पालते चले जाते हैं। घृणा करते हों तो बहुत संभावना है इसकी कि उसके प्रति मन के किसी न किसी कोने पर प्रेम भी संजोते रहें। जीवन के सभी तलों पर जो भी हैं, हम उसके विपरीत इकट्ठा करते रहने के पुराने मरीज हैं। महावीर ने पच्चीस सौ वर्ष पहले ही इस तथ्य को बता दिया था। और इसीलिए वे तमाम 'अतियों' से छूटने, तमाम द्वन्द्वों से मुक्त रहने की एक कीमती विधि लेकर खड़े हुए वह यही है—वीतरागता। अर्थात् आसानी के लिए कह सकते हैं कि एक ऐसी स्थिति जिसमें न क्रोध हो, न क्षमा, न हिंसा न अहिंसा, न सैक्स, न ब्रह्मचर्य, न प्रेम से घृणा, न शत्रुता न मित्रता। क्योंकि ये सारी चीजें एक ही टकसाल में ढले अलग-अलग नामों वाले सिक्कों के दो पहलू हैं। जब एक सामने होता है दूसरा छुपा रहता है। इसलिए इन तमाम द्वन्द्वों के प्रति ज ग जाने से जो स्थिति प्राप्त होती है वहां कोई चुनाव कोई छोर, या कहें सिक्के के किसी भी पहलू के प्रति कुछ भी लगाव, नहीं रह जाता। तब एक तीसरी ही दशा का बोध पहली बार होता है जो न 'इधर' पहुंचाती है न उधर, दोनों से पकड़ छूटने लगती है। महावीर के अनुसार 'इस' या 'उस' इन दोनों किनारों, दोनों अतियों पर डोलते रहने और घूमते रहने के इस दुष्चक्र से व्यक्ति का पीछा न छूटने के कारण ही हम विपरीत और विरोधी स्थिति में बार-बार इन्हीं द्वन्द्वों में भटकते रहते हैं। अब यदि इन दोनों हालतों से जागकर एक ऐसी दशा पा लें जहां कोई अति, कोई द्वन्द्व न हो तो यह वही दशा है जिसे उन्होंने वीतराग कहा है। उनकी यह दृष्टि बड़ी ही वैज्ञानिक दृष्टि है। और जातिस्मरण जैसी कीमती देन का सबसे बड़ा महत्त्व यही है कि उसके प्रयोग से व्यक्ति को वीतरागी होने में बहुत बड़ी सहायता मिलती है। कदाचित् कुछ गलत न होगा यदि यह निवेदन करूं कि जाति स्मरण का सबसे बड़ा सुफल जो है वह है—वीतरागता। इस प्रकार इन दोनों का परस्पर गहरा सम्बन्ध भी माना जा सकता है।

मोटे तौर पर तीर्थंकर का शाब्दिक अर्थ है—पार कराने वाला। चौबीस तीर्थंकरों की सुदीर्घ श्रृंखला में महावीर चौबीसवें तीर्थंकर हैं। प्रकटतः अन्तिम, किन्तु जिन्होंने गहरे देखा व जाना है तो महावीर इस श्रृंखला के केन्द्र हैं। कुछ इसी तरह से जैसे पैगम्बरों और नबियों की सुदीर्घकालिक व सुपुष्ट श्रृंखला में हजरत मोम्मद अन्तिम पैगम्बर होकर भी सबके केन्द्र हैं। प्रकारान्तर से पैगम्बरी-श्रृंखला में जो स्थिति मुहम्मद की है लगभग वही स्थिति तीर्थंकरों में महावीर की है। परमज्ञान या परम सत्य तो सभी तीर्थंकरों को उपलब्ध और बराबर ही उपलब्ध हुआ। उससे रती भर कमीबेशी की गुजाइंश नहीं। किंतु महावीर की अभिव्यक्ति क्षमता का मुकाबला किसी से नहीं हो सकता। उन्होंने सत्य को जितनी अभिव्यक्ति दी और जितने ढंग, जितने पहलुओं से दी उसका न जवाब पाया जा सकता है, न जोड़।

महावीर ने पार उतरने के जो उपाय या कहिए घाट, बताए हैं उनमें से एक है—श्रावक होना। बात बजाहिर कुछ अजीब-सी प्रतीत हो सकती है, कि श्रावक होना कौन बड़ी बात है। किंतु नहीं! बड़ी ही नहीं कठिन बात भी है। महावीर जैसा अद्भुत ज्ञानीपुरुष किसी शब्द का उपयोग यों ही या सामान्य अर्थों में नहीं करता है। सुनने की क्षमता या श्रवण-शक्ति यों तो प्रत्येक में होती ही है। तो किसी को भी जो सुन सकता हो श्रावक कहा जा सकता है। किंतु महावीर जिसे श्रावक कह रहे हैं वह मात्र सुनना या सुनने वाला ही नहीं। अपितु एक पूरी साधना ही है। यह तथ्य जरा समझ लेने जैसा प्रतीत होता है।

महावीर से पूर्व-चाहे वे चौबीस तीर्थंकरों वाली श्रृंखला के हों या उससे बाहर किसी अन्य परम्परा के। जो भी बुद्ध पुरुष आये और बुद्ध (गौतम), गोशाल, पूर्ण काश्यप आदि जो भी ज्ञानी पुरुष उनके समकालीन हुए उनमें से किसी ने भी इस ओर दृष्टिपात नहीं किया कि कोई व्यक्ति श्रावक कैसे बने, सुनने वाला कैसे बने। किस प्रकार से वही सुन सके जो उससे कहा जा रहा है। उन सभी को केवल इस बात का विचार रहा कि जो उन्होंने जाना है जो उनके अनुभव में आया उसे वे किस प्रकार ठीक-ठीक अभिव्यक्ति दे सकें। कह सके हैं; इसका कुछ भी विचार नहीं कि जिससे वे बोल रहे हैं, कह रहे हैं; वह भी ठीक ठीक सुन पा रहा है या नहीं। उनका ध्यान खुद पर और जो कहा जा रहा था उस पर था। वह जो उनके सामने बैठा उन्हें सुन रहा था उस पर नहीं था। महावीर वे पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने इस बात पर बहुत अधिक ध्यान दिया, कि वे जो कह रहे हैं उतना ही ठीक होना पर्याप्त नहीं। बल्कि सुनने वाला भी 'ठीक' होना चाहिए। उनके अनुसार ठीक-ठीक सुना जाना तभी सम्भव हो सकता है जब सुननेवाले के चित्त पर चलता सारा विचार-प्रवाह ठहर जाये, शान्त हो जाये, और जब ऐसी स्थिति जिसे कहते हैं निर्विचार-अवस्था पैदा हो जाती है तभी सुनना सार्थक हो पाता है। अन्यथा सुना तो कान से भी जाता है। किन्तु उसे श्रावक नहीं श्रोता कहते हैं। श्रावक कानों से नहीं प्राणों से सुनता है। चेतना से सुनता है। आत्मा से सुनता है। श्रावक बहुत ही उच्च श्रेणी है।

महावीर ने बड़ी गहरी दृष्टि और बड़े श्रम के साथ आध्यात्मिक जगत् में एक अभूतपूर्व कला का बीज डाला। जिसे कहा जाना चाहिए—श्रावक-कला। वे अकेले इस कला के आविष्कारक हैं, या कहें जन्मदाता हैं। सही अर्थों में श्रावक वही है जो निर्विचार की स्थिति में सुनवाने की क्षमता पैदा कर लेता है। फिर उसके सुनने के लिए भाषा-शब्द या ध्वनि के माध्यम की अनिवार्यता नहीं रह जाती है। ऐसी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वाणी जो बोली ही नहीं गयी किन्तु सुनी जा सकती है। इसके लिए पुरानी भाषा में एक शब्द है—दिव्यध्वनि। यानी किसी बुद्ध पुरुष के भीतर से उठी और किसी में सम्प्रेषित हो गयी। ऐसा तभी सम्भव है जब कोई ध्यानस्थ बैठकर निर्विचार की स्थिति को पहुंच पाये। उसके मन पर विचार की कोई भी रेखा बनती-मिलती न हो, कोई शब्द, कोई भाव, कोई तरंग न हो। पूर्ण मौन होकर सुन सके। केवल सुननेवाला यानी श्रोता होने में और भीतर-बाहर पूर्ण मौन सुननेवाला ज्ञानी श्रावक होने में जो बड़ा भारी अन्तर है उसे स्पष्ट करने के लिए महावीर एक बड़ा कीमती शब्द प्रयोग में लाये—सम्यक् श्रवण।

श्रोता केवल सुन पाता है, सम्यक् श्रवण को प्राप्त नहीं हो पाता। श्रावक ही सम्यक् श्रवण को प्राप्त हो सकता है। साधना जगत् में कोई व्यक्ति श्रोता से श्रावक कैसे हो सकेगा इसके लिए महावीर ने जो पद्धति प्रस्तुत की उसकी सबसे प्रथम सीढ़ी है—प्रतिक्रमण। यह प्रतिक्रमण शब्द बड़ा युक्तियुक्त लाये हैं वे। 'आक्रमण' शब्द सर्वविदित है। प्रतिक्रमण ठीक उसका उल्टा है। हमारी चेतना, किसी भी जड़ या चेतन से, जहां जहां भी अपना एक लगाव रखे है, जिस-जिसके भी आसपास अटकी हुई है, जिन-जिनसे भी सम्बन्धित है, जुड़ी है, वह सब सूक्ष्म रूप से एक प्रकार का आक्रमण ही है। प्रतिक्रमण का मतलब है उन तमाम जगहों, वस्तुओं, केन्द्रों या बिन्दुओं से चेतना को वापस लौटा लेना। पूरी तरह से समेट लेना। उस सारे फैलाव, बल्कि जाल, से वापस ले आना ही प्रतिक्रमण कहलाता है। इसी के द्वारा ही कोई व्यक्ति ठीक से मौन में, निर्विचार में उतर सकता है। और तभी वह सम्यक् श्रवण का पात्र होकर श्रावक बन सकता है। श्रावक-कला को प्राप्त कर लेना अपने आप में एक बड़ी उपलब्धि इसलिए है कि अब जो मौन में बोला गया उसे सुना ही नहीं पाया जा सकता है। बल्कि जो किसी स्थूल माध्यम से कहा भी न जा सके बस समझा जा सके, अनुभव में लिया जा सके उसे भी पाया जा सकता है। कोई बुद्ध पुरुष सामने हो और यदि वह चाहे कि उसके श्रावक तक वह पहुंच जाये, जो देना अभीष्ट है तो वह उस तक एकदम पहुंचाया जा सकता है। (स्मरण रहे कि यह पद्धति टैलीपैथी जैसी प्रक्रिया से नितान्त भिन्न है। क्योंकि टैलीपैथी में विचार सम्प्रेषण ही चलता है जबकि इसमें स्थिति निर्विचार की होती है)। इस प्रकार महावीर जब श्रावक होना पार उतरने का एक उपाय, एक घाट कहते हैं तो एक बहुत कीमती प्रक्रिया दे रहे हैं जो साधना जगत् में उनकी एक अप्रतिम, अद्वितीय और अभूतपूर्व खोज है।

सभी तरह की साधनाओं में एक प्रक्रिया चलती है। जिसके लिए एक शब्द है—ध्यान। चाहे वह योग हो, सूफी साधना हो, तन्त्र हो या भक्ति ही क्यों न हो। ध्यान किसी न किसी प्रकार विद्यमान पाया जाता है। भले ही नाम अलग हो या रूप तनिक भिन्न हो। ध्यानाचार्यों की एक बड़ी लम्बी, समृद्ध और बहुत विकसित परम्परा भारत में रही है। महावीर द्वारा प्रतिपादित साधना-मार्ग भी वस्तुतः ध्यान-मार्ग ही है। किन्तु उनकी विशेषता यह है कि उन्होंने इसे ज्यों का त्यों नहीं उठा लिया। बल्कि इसमें भी उन्होंने अपनी वैज्ञानिक दृष्टि के साथ इसे एक अलग-सा रूप प्रदान किया जिसे उन्होंने नाम दिया है—सामायिक। यों इस शब्द को ध्यान का पर्याय माना जा सकता है। किन्तु इसमें और महावीर से पूर्व का यानी परम्परागत ध्यान-पद्धति में फर्क है। उदाहरण के लिए जैसे ही ध्यान शब्द हमारे सामने आता है तो उसके साथ एक प्रश्न ध्वनित होता महसूस होता है। 'किसका ध्यान ?' अथवा 'किसके ध्यान में ?' या 'किस पर ध्यान ?' या 'कहां ध्यान लगायें ?' इत्यादि (यह मैं साधना की दृष्टि से कह रहा हूं) यानी प्रकारान्तर से ध्यान शब्द ही किसी न किसी रूप में 'पर-केन्द्रित' दिखाई पड़ता है। अतः महावीर—जो किसी भी पर के समर्थक हरगिज नहीं बल्कि 'स्व' के प्रबल पक्षधर हैं—ने बजाय ध्यान के सामायिक शब्द देकर उसे 'पर' से सर्वथा मुक्त करने का साहसिक प्रयास किया। उनके अनुसार समय का मतलब है आत्मा। तो सामायिक का अर्थ हुआ समय अर्थात् आत्मा से स्थिर होने की स्थिति। यह जो समय को उन्होंने आत्मा की संज्ञा दी। यह बात जरा अजीब-सी लग सकती है और कोई परिकल्पना-सी प्रतीत होती है और बड़ा विस्तार चाहती है। किन्तु यहां मैं थोड़े में स्पष्ट करके आगे निवेदन करूंगा।

अधिकतर विचारकों की दृष्टि में काल तथा क्षेत्र सदा से दो भिन्न चीजें मानी जाती रही हैं। यानी काल अलग है, क्षेत्र अलग है। किन्तु आइन्स्टीन के कारण एक अभूतपूर्व घटना घटी। यानी उसने अपने सापेक्ष-सिद्धान्त द्वारा यह साबित कर दिया कि ये दोनों अलग नहीं अभिन्न हैं। दोनों एक साथ और एक ही चीज के हिस्से हैं। विज्ञान-जगत् में प्रथम बार यह क्रान्ति हुई कि काल व क्षेत्र को जोड़ लिया गया। मोटे तौर पर किसी चीज के अस्तित्व में तीन बातें देखी जाती हैं, भौतिक शास्त्र के अनुसार। यानी लम्बाई, चौड़ाई व ऊंचाई। किन्तु शनैः शनैः यह पाया गया कि इन तीनों में से किसी में भी उसका 'अस्तित्व' नहीं समा पाता है। तब इस अस्तित्व के बारे में जो भी वक्तव्य दिया जाये वह अधूरा होगा कि कोई चीज कहां, किस स्थान पर व किस आकार की है। किन्तु प्रश्न उठता है—कब है ? और इसके उत्तर बिना अस्तित्व की व्याख्या अपूर्ण होगी। तो आइन्स्टीन ने अस्तित्व की सबसे पहली अनिवार्यता मानी है—समय या काल। भौतिक विज्ञान को उसकी यह देन बड़ी महत्त्वपूर्ण है। उधर आत्मा के विज्ञान में और साधना-जगत् में सबसे प्रथम महावीर को यह बोध हुआ कि समय जो है वही चेतना की दिशा है। दूसरे शब्दों में समय के बिना चेतना का अस्तित्व अनुभव में नहीं आ सकता। अतः समय का जो बोध है, भाव है, वही चेतना का सबसे अनिवार्य अंग है, अतएव उन्होंने आत्मा को समय ही कहना अधिक उचित समझा। और यह इसलिए भी कि एक ही तत्त्व (समय या काल) अनादि, अनन्त, शाश्वत, सनातन भी है। सदा से है और सदा रहने वाला है। बाकी जो भी आयेगा, चला

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जायेगा, मिट जायेगा, खो जायेगा, और भी कारण है जिससे उन्होंने समय को आत्मा कहा। विस्तारभय से इस समय उनकी चर्चा नहीं करूंगा। तो, इस प्रकार समय को आत्मा कहा गया।

महावीर द्वारा प्रदत्त सामायिक-साधना अन्य ध्यान-साधनाओं की अपेक्षा कुछ अपनी-सी विशिष्टता रखती है। जो विज्ञान के काफी निकट है। इसके साथ ही यह शब्द सामायिक उनकी साधना पद्धति का सर्वथा केन्द्रीय शब्द भी है। महावीर द्वारा प्रदत्त समस्त साधनागत प्रक्रियाएं सामायिक तक पहुंचाने का साधन प्रतीत होती हैं। सामायिक को उन्होंने दो हिस्सों, कहें दो चरणों में रखा। पहला है प्रतिक्रमण (जिसके बारे में निवेदन किया जा चुका है) अर्थात् जहां-जहां भी हमारी चेतना जिस-जिससे भी सम्बद्ध है, वहां-वहां से उसे असम्बद्ध कर लेना। चाहे वे जड़ पदार्थ हो या सचेतन। इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता, उसे लौटा लेना है, सब तरफ से काटते हुए सिमटाते हुए वापस खींच लेना है। यह प्रथम हिस्सा यानी प्रतिक्रमण हुआ। किन्तु महावीर की दृष्टि हर मामले में बड़ी ही गहरी है। उन्हें इस बात का पूरा पूरा ज्ञान है कि प्रतिक्रमण केवल एक प्रक्रिया है। स्वभाव नहीं है। अतः वही लौटी हुई चेतना जितनी शीघ्रता से सब ओर से खिंचकर लौटती है। तो अगर उसे कोई ठौर-ठिकाना न मिले तो वापस वहीं-की वहीं फिर चली जाती है। इसलिए उन्होंने उसके आगे का बहुत कीमती सूत्र दिया कि जब चेतना लौट आये तो फिर इससे आगे की बात यानी दूसरा चरण प्रारम्भ होता है—कि अब उसे 'स्व' में, अपने केन्द्र यानी आत्मा (लक्ष्य) में स्थिर किया जाना चाहिए, रमा लिया जाना जाहिए। क्योंकि यदि वह आत्मा पर न रुकी, न ठहरी, तो फिर किसी न किसी 'पर' से जाकर सम्बन्धित हो जायेगी। इस दूसरे चरण का नाम ही उन्होंने दिया है—सामायिक। इन दोनों चरणों को पूरा करने से जो क्रिया सम्पन्न होती है महावीर ने उसे सम्यक् ध्यान कहकर इंगित किया है। तो सामायिक का अर्थ इस प्रकार हुआ आत्मा में स्थिर हो जाना। अब इस शब्द सामायिक से कुछ ऐसा ध्वनित होता महसूस नहीं होता कि किसकी सामायिक ? बड़ी सुन्दरता और बड़े वैज्ञानिक ढंग से उन्होंने बात पूरी कर दी। उनका लाया गया यह शब्द और इसके पीछे दी हुई प्रक्रिया साधना-जगत् की तमाम भाषाओं में सबसे अधिक वैज्ञानिक और अद्‍भुत शब्द है, वह बेजोड़ है।

महावीर द्वारा प्रदत्त दर्शन-दृष्टि के अन्तर्गत उनका स्यात् तो अनेकान्त-दर्शन और साधना के अन्तर्गत जाति स्मरण, वीतरागता, श्रावक, कला तथा सामायिक। ये पांचों बातें मुझे सबसे अधिक अपील करती हैं और उनकी अद्‍भुत वैज्ञानिक दृष्टि का बड़ा गहरा परिचय देती हैं। इसीलिए मैंने इनकी ओर संकेत करने का यह छोटा-सा प्रयास भर किया है। इसके अतिरिक्त भी महावीर की बहुतेरी बातें ऐसी हैं जो भले ही उनके युग में कीमती न भी समझी गयी हों किन्तु आज जब विज्ञान-मनोविज्ञान के इतने विकसित युग में उन्हें देखने-परखने का प्रयास किया जाता है तब उनके सही मर्म की जानकारी मिलती है कि अध्यात्म-विज्ञान में महावीर ढाई हजार वर्ष पूर्व ही इतनी वैज्ञानिक दृष्टि का बोध पा चुके थे, दे भी चुके थे, जो विज्ञान फिलहाल प्राप्त नहीं कर पाया है। लेकिन भावी विज्ञान महावीर को और भी अधिक स्वीकृति देगा इसमें अब सशंय की संभावना नहीं रह गयी है।

जैनधर्म और विज्ञान

आजकल दुनिया में विज्ञान का नाम बहुत सुना जाता है। इसने ही धर्म के नाम पर प्रचलित बहुत से ढोंगों की कलई खोली है, इसी कारण अनेक धर्म यह घोषणा करते हैं कि धर्म और विज्ञान में जबरदस्त विरोध है। जैन धर्म तो सर्वज्ञ, वीतराग, हितोपदेशी जिनेन्द्र भगवान् का बताया हुआ वस्तुस्वभाव रूप है। इसलिए यह वैज्ञानिकों की खोजों का स्वागत करता है।

भारत के बहुत से दार्शनिक 'शब्द' को आकाश का गुण बताते थे और उसे अमूर्त्तिक बताकर अनेक युक्तियों का जाल फैलाया करते थे, किन्तु जैन धर्माचार्यों ने शब्द को जड़ तथा मूर्तिमान बताया था। आज विज्ञान ने ग्रामो-फोन रेडियो आदि ध्वनि सम्बन्धी यंत्रों के आधार पर 'शब्द' को जैन धर्म के अनुसार प्रत्यक्ष सिद्ध कर दिया है। आज हजारों मील दूर से शब्दों को हमारे पास तक पहुंचाने में माध्यम रूप से 'ईथर' नाम के अदृश्य तत्त्व की वैज्ञानिकों को कल्पना करनी पड़ी, किन्तु जैनाचार्यों ने हजारों वर्ष पहले ही लोकव्यापी 'महास्कन्ध' नामक पदार्थ के अस्तित्व को बताया है। इसकी सहायता से भगवान् जिनेन्द्र के जन्मादि की वार्त्ता क्षण भर में समस्त जगत् में फैल जाती थी। प्रतीत तो ऐसा भी होता है कि नेत्रकम्प, बाहुस्पन्दन, आदि के द्वारा इष्ट अनिष्ट घटनाओं के सन्देश स्वतः पहुंचाने में यही 'महास्कन्ध' सहायता प्रदान करता है।

—आचार्य श्री देशभूषण, भगवान् महावीर और उनका तत्त्व दर्शन, दिल्ली १९७३, पृ० ३८-३९ से उद्‍धृत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org